INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH IN COMMERCE, IT, ENGINEERING AND SOCIAL SCIENCES (IJRCIESS) ISSN: 2349-7793
Vol. 4 No. 7 (2010): July
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

प्राचीन भारत का सैन्य इतिहास

निर्देशक
डॉ॰ कुलदीप सिंह
असिसटेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय पंचकूला (हरियाणा)

शोधार्थी,
पुष्पा
सिंघानिया विश्वविद्यालय
पंचैरी बाड़ी, राजस्थान

शोध–आलेख सार :

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राचीन भारत का सैन्य इतिहास पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। भारत में प्रारंभिक काल से ही सैन्य व्यवस्था प्रचलित है । प्राचीन काल से ही भारत में सुसंगठित, सुप्रशिक्षित एवं निपुण सेना थी । प्राचीन भारत के इतिहास में सेना का उल्लेख हमें वेदों, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, जैन व बौद्ध ग्रंथों, यूनानी ग्रंथों, अभिलेखों इत्यादि में विस्तृत रूप में मिलता है । वैदिक सभ्यता में भारतीय सेना के तीन प्रमुख अंग होते थे – पदाति (पैदल), रथ एवं अश्व । लेकिन उत्तरवैदिक काल अथवा महाभारत काल में व मौर्य काल में चतुरंगिणी सेना का आरंभिक तथा विकसित रूप देखने को मिलता है। गुप्तकाल तक आते–आते राज्य की संगठित सेना का स्थान सामन्ती सेना ने ले लिया था । सेना के पदों के नाम में भी परिवर्तन हुआ । रथ सेना गुप्तकाल में सेना का एक महत्त्वपूर्ण अंग थी । अश्व सेना व हस्ति सेना भी गुप्तकाल व गुप्तोत्तर काल में युद्ध में महत्त्वपूर्ण योगदान देती थी । महान चीनी यात्री हयूनसांग ने भी सैन्य व्यवस्था पर प्रकाश डाला है । शुंगकालीन व सातवाहन वंशकालीन सैन्य व्यवस्था भी उत्कृष्ट थी ।

अनादिकाल से सेना की भूमिका और उसका महत्त्व विशिष्ट रहा है। आदिकाल में मानव जंगली जानवरों एवं अपने शत्रुओं से बचाव के लिए समूह बनाकर रहने लगे । कालान्तर में स्थायी सभ्यता के विकास से स्थायी जीवन–शैली का विकास हुआ । उसके पश्चात् जनपदों एवं राज्यों के विकसित होने पर हृष्ट–पुष्ट लोगों को सुरक्षा कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया । उन्हें इस कार्य के बदले भूमि, वेतन अथवा अन्य प्रकार की सुविधाएं प्रदान की गयी । सम्भवतः इस तरह सेना अस्तित्व में आई । प्रत्येक युग में राज्य या देश के स्थायित्व एवं विकास में सेना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में सेना के महत्त्व के बारे में अनेक उल्लेख मिलते है ।

भारत की सबसे प्राचीन सिन्धु सभ्यता के उत्खनन से प्राचीन आयुद्धों एवं अन्य साक्ष्यों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस काल में लोग युद्ध कला से परिचित थे । वैदिक साहित्य से भी स्पष्ट है कि प्रारंभ में इस पृथ्वी पर कोई राजा अथवा राज्य नहीं था ।राजा के अभाव में स्थिति बड़ी भयंकर थी । अराजकता की व्याप्त स्थिति थी किन्तु भयानक अराजकता की यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रहीं क्योंकि वैदिककालीन साहित्य में हम राज्य–शासन की दस प्रणालियों का स्पष्ट उल्लेख पाते हैं । इस समय राजा पृथक्–पृथक् राज्यों की घोषणा करते हुए समुद्रपर्यन्त राज्य स्थापित करने की इच्छा रखते थे तथा सार्वभौम सम्राट बनाना चाहते थे । साम्राज्य स्थापित करने के लिए नरेश राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करते थे । ऋषियों द्वारा प्रेरित इस प्रकार के यज्ञों के सम्पादन में राजाओं को युद्ध करने पड़ते थे । सेना के अभाव में युद्ध में विजय प्राप्त करना एवं साम्राज्य स्थापित करना असंभव था । अतः सेना साम्राज्य अथवा राज्य का एक आवश्यक अंग होती

थी । 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भी इस बात का उल्लेख मिलता है कि राज्य–प्रजापति यज्ञ करके राजा, वाजपेय–यज्ञ करके सम्राट, अश्वमेध से एकराट और पुरुषमेध–यज्ञ करके विराट बनने की कामना करते थे । कोई भी राजा अश्वमेध, वाजपेय आदि यज्ञों के अनुष्ठान से राज्य का विस्तार कर सकता था । क्योंकि ये यज्ञ सेना के अधीन होते हैं । अतः इससे भी सेना का महत्त्व प्रकट होता है । इसी तरह वैदिक राजनीति से 'राज्य' से सत्ता और संगठन के अर्थ का ज्ञान होता है । वैदिक साहित्य में ऐसे राज्य के अंगों का रत्निन् कहा गया है जिनकी संख्या 'अथर्ववेद' में पांच तथा 'तैत्तरीय संहिता' में बारह बताई गई है । उसमें सेनानी तथा ग्रामीण का उल्लेख हुआ है । सेनानी, सैनिकों का प्रमुख नायक होता था । जिसकी नियुक्ति राजा अपने कार्यक्षेत्र में बढ़ जाने पर किया करता था । ग्रामीण, ग्राम का रक्षक तथा ग्राम का प्रमुख योद्धा होता था । राजा को आपत्ति काल में ग्राम के समस्त योद्धा, सैनिक, ग्रामीण के नेतृत्व में राजा की सहायता के लिए आते थे । पंचविश ब्राह्मण में एक सूची उन वीरों की प्राप्त होती है जो राजा के सहायक होते थे । निश्चय ही वे वीर, सहायक सैनिक रहें होंगे, जो सेनानी अथवा ग्रामीण के नेतृत्व में कार्य करते रहे होंगे । राजा सेनानी और ग्रामीण की सेना के सहयोग से यज्ञों के माध्यम से समुद्रपर्यन्त साम्राज्य स्थापित कर 'चक्रवर्ती' कहलाता था । इस प्रकार ऋग्वैदिक भारतवर्ष की वीरता नये देश की विजय की आकांक्षा, दासों और आर्यो के पारस्परिक युद्धों ने राज्य रक्षा और साम्राज्यवादी लिप्सा को शांत करने के लिए संगठित सैन्य–व्यवस्था की आवश्यकता होती थी । उत्तर वैदिक काल में भी यह परम्परा चलती रही । सैन्य शक्ति के प्रयोग से ही अनेक सम्राटों के चक्रवर्ती बनने के लिए यज्ञ किये थे ।

दशरथ–पुत्र राम, उनके पूर्वज रघु, दुर्योधन, युधिष्ठिर, पुष्यमित्र शुंग, चन्द्रगुप्त मौर्य, समुद्रगुप्त इत्यादि नरेशों ने भी अश्वमेध आदि यज्ञ कर समुद्रपर्यन्त राज्य स्थापित किया था । इतने बड़े राज्य का स्वरूप भी पूर्ववत् न रहकर बदल गया था । राजा सेना और राष्ट्र के अतिरिक्त राज्य के चार अन्य आवश्यक अंगों को राज्य की प्रकृति कहा गया है । प्राचीन ग्रंथों में भी प्रायः सात अंगों का उल्लेख प्राय होता है । जैसे – राजा, अमात्य, जनपद अथवा राष्ट्र, दुर्गकोष, दण्ड अथवा बल और मित्र जिनमें सेना या बल का भी वर्णन है ।

सप्तांग राज्य में बल, दण्ड अथवा सेना उसके अविभाज्य और अनिवार्य अंग होने के कारण उसकी महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है । राजा की रक्षा के लिए सेना तथा दुर्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे । ऐसा प्रतीत होता है कि कालान्तर में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी सेना पर निर्भर होने लगे। स्मृतियों के काल में भी इस आदर्श को मान्यता प्रदान की गई है।

स्मृति युग तक सेना के महत्त्व, उसके अंग तथा युद्ध प्रणाली विषयक प्रश्नों पर काफी विचार–विमर्श हो चुका था । प्राचीन परम्पराएं शताब्दियों के अन्तर और राजनीतिक चिन्तन के विकास के कारण ही धीरे–धीरे सिद्धान्त रूप ग्रहण कर चुकी थी । अतः युद्धों के लिए ही नहीं, राज्य की सीमाओं की रक्षा, राज्य के आंतरिक भागों में नागरिक जीवन की सुरक्षा तथा शान्ति और व्यवस्था के लिए भी सेना महत्त्वपूर्ण अंग बन चुकी थी । मनु, राज्य की सुव्यवस्था, ब्राहय आक्रमणों से रक्षा तथा विजिगीषु बनने वाले व्यक्ति के लिए सेना आवश्यक मानते है । मनु राज्य के उन सात अंगों में किसी को भी एक–दूसरे से छोटा–बड़ा नहीं मानते । उनके मतानुसार राज्य का प्रत्येक अंग अपने–अपने स्थान पर बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण होता है । कौटिल्य ने इन प्रकृतियों को महत्त्व प्रदान करते हुए उन्हें राज्य की सम्पत्ति नाम से सम्बोधित किया है। इन सातों प्रकृतियों के सम्पन्न होने पर राष्ट्र सत्ताधारी अथवा सर्वोपरि शक्तिशाली बनता है । ऐसा ही राष्ट्र अपनी समस्त प्रजा पर पूर्णतः अधिकृत होता है और पराराष्ट्रों के आक्रमणों से उनकी रक्षा कर सकता है ।

राष्ट्र सत्ताधारी अथवा सर्वोपरि शक्तिशाली बनता है । ऐसा ही राष्ट्र अपनी समस्त प्रजा पर पूर्णतः अधिकृत होता है और पराराष्ट्रों के आक्रमणों से उनकी रक्षा कर सकता है।

इस प्रकार आत्मगुण सम्पन्न राजा, छोटे देश का स्वामी होते हुए भी, प्रभुसत्ता की प्रकृतियों से युक्त होकर, अपनी नीति के बल से सारी पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर सकता है । 'अर्थशास्त्र' में भी बाह्य तथा आभ्यंतर कोष के प्रतिकार के लिए तथा अभियान के लिए सेना आवश्यक समझी गई है । मौर्यकाल में उपर्युक्त आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही चन्द्रगुप्त के कूटनीतिज्ञ अमात्य चाणक्य ने बल को राज्य का आवश्यक अंग मानते हुए कहा है कि बल के कारण ही शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, शुक्राचार्य ने भी राज्य के इनसात अंगों में सेना के महत्त्व को सबसे अधिक बतलाया है । राज्य से धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है । इसीलिए शुक्राचार्य ने अपनी दण्डनीति के आरंभ में ही राज्य रूपी इस वृक्ष को नमस्कार किया है । जिसकी शाखाएं षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संकाय और देधीभाव) है, और जिसके मूल (साम, दाम, दण्ड और भेद) तथा फल त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) है । इसी प्रकार शुक्राचार्य राज्य के अंगों की तुलना शरीर के अंगों से भी करते है, राजा सिर है, मंत्री लोग आँखें, मित्र लोग कान है, कोष मुख है सेना मन है, दुर्ग राजधानी एवं राष्ट्र हाथ और पैर हैं । यहां भी शुक्राचार्य जी ने बल (बल–सेना) को बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं क्योंकि बल–सेना को मन के समान बताया गया है । शरीर में इन्द्रियों का राजा मन हैं क्योंकि उन्हें किसी काम में निवृत और प्रकृत यही करता है । राज्यों को स्थिर और सुदृढ़ रखने में सेना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है । उसी के बल पर राज्य का अस्तित्व बना रहता है । इसलिए बल–सेना का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

कौटिल्य ने राजा के समीप रहने के कारण सेना को अमात्यों के समान माना है । जनपद की प्राप्ति और उसकी सुरक्षा भी उसके अधीन है । सेना के अभाव मे किसी के राज्य पर अधिकार करना कठिन है क्योंकि अपनी सैनिक शक्ति न होने पर शत्रु के राज्य पर विजिगीषु कभी भी अपनी सेना बढा नहीं सकता । कभी–कभी दुर्ग की रक्षा भी सेना के अधीन रहती है, जहां सबल सैनिक अधिक रहते हैं । मनु के अनुसार जिसके पास शक्तिशाली सेना होती है उसके मित्र तो मित्र ही बने रहते हैं किन्तु शत्रु भी मित्र बन जाते हैं । जिस प्रकार देश, काल तथा कार्य के अनुसार सेना और कोष दोनों महत्त्वपूर्ण होते हैं । उसी प्रकार सेना और मित्र के साधारण कार्य में लाभ के अनुसार अपने युद्ध देश और काल की अपेक्षा से महत्त्वपूर्ण होती है ।

शुक्राचार्य भी कहते हैं कि जिस राजा के पास नीति और सैन्य बल होता है उसके पास लक्ष्मी स्वयं दौड़कर चली आती है । चन्द्रगुप्त को उसके सैनिक बल रूवम् नीति के कारण ही लक्ष्मी ने स्वयं राजा (वर) के रूप में चुना था ।शत्रु से देश की रक्षा के लिए अथवा बाह्य आपत्तियों से बदला लेने के लिए सेना की आवश्यकता होती थी । राजाओं का कर्त्तव्य चोरों और शक्तिशालियों से उत्पन्न आभ्यन्तर कोष और मात्स्य से प्रजा की रक्षा के अतिरिक्त शत्रु की सेना से प्रजा की रक्षा करना भी था । शत्रु सैन्य से प्रजा की रक्षा करने के लिए अपने पास दण्ड शक्ति, सैन्य शक्ति होना अनिवार्य था क्योंकि बिना दण्ड के आंतरिक सुव्यवस्था के साथ–साथ ब्राह्य आक्रमण से प्रतिरक्षा असंभव थी । प्राचीन काल में राजा ब्राह्य आपत्तियों के प्रतिकारों के लिए सेना रखना आवश्यक समझते थे ।

वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, जैन तथा बौद्ध साहित्य, विदेशी यात्रियों के विवरण व अभिलेखों से ब्राह्य आपत्तियों के प्रतिकारार्थ सेना के उद्धरण प्राप्त होते है । ऐतिहासिक युग में सिकंदर के साथ आये हुए यूनानी इतिहासकारों के विवरण से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन राजतंत्र तथा गणराज्यों ने अपनी–अपनी प्रतिरक्षा के लिए सेना का उपयोग किया था । सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री चाणक्य इस प्रकार की आपत्तियों को ब्राह्य कोप कहता था जिसके प्रतिकार के लिए सेना बहुत आवश्यक थी । भारत की और बढ़ते हुए सैल्यूकस से अपने राज्य की रक्षा के लिए सन्नदृ चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी वाहिनी के साथ शर्त रखकर उससे सन्धि की थी । मौर्य काल के पश्चात पुष्यमित्र शुंग के काल में भारत दारूण– यवन आक्रमण का लक्ष्य बन गया । यवन ने साकेत और माध्यमिका को घेर लिया था परंतु मालविकाग्निमित्रम् से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र की सेना के प्रतिकारा के लिए आर्यावर्त तथा दक्षिणापंथ तथा अन्य अनेक राजा राज्यों की सेना उपयोग के आई थी । वर्द्धन वंश के प्रभाकरवर्द्धन, राज्यवर्द्धन तथा हर्षवर्धन के सेना के विरोध में अनेक राजाओं ने सैन्य प्रयोग किया था । अभिलेखों से भी प्रतिकारा के लिए सेना के उपयोग का वर्णन प्राप्त होता है ।

निष्कर्ष :

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में भी भारतीय सैन्य इतिहास सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित व सुप्रशिक्षित थी । वैदिकाल के आर्य राज्य की राजनीति, राष्ट्र संरक्षण तक ही सीमित नहीं थे बल्कि राज्य विस्तार की योजनाओं से भी प्रेरित थे । इसी लिए उनके पास निपुण चतुरंगिणी सेना होती थी । जिसके बलभूते पर आर्य शासक अभिषेक, राजसूय, वाजपेय और अश्वमेध यज्ञ करते थे और अपनी प्रतिष्ठा कायम करते थे । जैन–ग्रंथों व बौद्ध ग्रंथों के अनुसार अनेक चक्रवर्ती राजाओं ने विशाल वाहिनी (सेना) के साथ प्रयाण कर अनेक राजाओं को पराजित किया था । बौद्ध साहित्य के महाजनपद काल में प्रत्येक जनपद अपनी प्रभुसत्ता के प्रदर्शनार्थ एक–दूसरे के राज्य को हड़पने के लिए सैनिक शक्ति बढ़ाने में अत्याधिक रूचि लेते थे । अजातशत्रु ने भी लिच्छिवियों के विरूद्ध एक बहुत बड़ी सेना का उपयोग कर उनको पराजित करने के पश्चात् अंग, काशी, कौशल, वैशाली व अन्य प्रदेशों को विजय कर मगध राज्य का विस्तार किया था । कौटिल्य की विजिगीषु को शत्रु की उपेक्षा अधिक सेना रखने के पश्चात् ही सैन्य प्रयाण का आदेश देते हैं । भागवतपुराण की टीका के अनुसार नन्द राज्य के पास दस पदम सेना, अथवा ही सम्पत्ति थी । इसी से इसका नाम महापदमनंद पड़ा । नंद सम्राटों के पश्चात् पुष्यमित्र शुंग, गुप्त वंश के अनेक सम्राट, सातवाहन नरेश आदि ने अश्वमेध यज्ञ किया था जिससे दिग्विजयनार्थ उनकी विशाल वाहिनी का ज्ञान होता है । हर्ष भी एक महान विजेता था । हयूनसांग के अनुसार उसने निरंतर लड़ते हुए अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त की थी ।प्रतिहार नरेश ने अपनी सेना से म्लेच्छराज की सेना को परास्त कर भड़ौच तक धावे बोले थे । वत्सराज अपनी विजयों के कारण पर्याप्त कीर्तिमान हुआ । उसने गौड़ नरेश धर्मपाल को भी पराजित किया था । पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट तो आपस में शक्ति प्रदर्शन के लिए अनेक बार एक दूसरे पर विशाल वाहिनी द्वारा आक्रमण करते थे । इन अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि भारतीय नरेश राज्याभिषिक्त होने पश्चात् विजयाभियान के लिए विशाल वाहिनी संग्रहित करने का प्रयत्न करते थे । भारतीय नरेश अथवा गणराज्य न केवल आंतरिक सुरक्षा के लिए सेना आवश्यक समझते थे बल्कि बाह्य आक्रमण से देश की रक्षा के लिए भी सेना अनिवार्य मानते थे ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आर॰ रीथ और डब्ल्यू॰ डी॰ विटले, अथर्ववेद, 8.10.1 (सम्पा॰), बर्लिन, 1856
2. ऐतरेय ब्राह्मण, 8.6; 8.15, त्रावणकोर विश्वविद्यालय, संस्कृत सीरीज, त्रिवेंद्रम, 1977
3. मैकडानल्ड और कीथ, वैदिक इण्डेक्स, पृ॰ 246–247
4. महाभारत, नीलकंठ की टीका सहित गोरखपुर, 1922, 12.23, 67.6, 67.4
5. एच॰ अल्तेकर, प्राचीन शासन पद्धति, दिल्ली, 1964, पृ॰ 169–70
6. पंचविश ब्राह्मण, 19.1.14
7. मनुस्मृति, 9.294;
8. अर्थशास्त्र, 6.111
9. शुक्रनीति, 1.16
10. मनुस्मृति, 7.13 (ले॰) मनु (अनु॰) पं॰ गंगानाथ झा, पाँचवाँ भाग, कलकत्ता, 1928
11. (सम्पा॰) आर॰ शाम शास्त्री, अर्थशास्त्र, 8.1.61,62, 8.1.45, 9.11, 8.1.52, मैसूर, 1919
12. वी॰ के॰ सरकार, शुक्रनीति, 5.12–13 शुक्रनीति सार (अंग्रेजी–अनु॰), इलाहाबाद, 1923
13. अर्थशास्त्र, 6.1.30 (सम्पा॰) आर॰ शाम शास्त्री मैसूर, 1919
14. रामायण अयोध्या काण्ड 9.11.17; 83.2–4; 70.20 बालकांड, 6.21; 66.22–24
15. ऋग्वेद, 4.30.14; 7.18, 1–25; 7.33.3–5;, 1.53.10; 7.18.5–25 (सम्पा॰) एफ॰ मैक्समूलर, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना 1933
16. हर्षचरित, प्रथम उच्छ्वास, 174
17. डी॰ पी॰ दीक्षित, पॉलिटिक्स हिस्ट्री ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया, मैसूर, 1988, पृ॰ 184–186